प्रश्न — भ्रमरगीत में निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन कीजिये?

अथवा — भ्रमर गीत लेखन में सूरदास का क्या उद्देश्य है? इसके आधार पर सगुण तथा निर्गुण सम्बन्धी आदर्शों का विवेचन कीजिये।

अथवा — सूर के दार्शनिक दृष्टिकोण दर्शाये?

उत्तर — किसी रचना के प्रणयन में प्रणेता का कोई न कोई उद्देश्य होता है। भक्त कवि सूरदास एक क्रान्तिकारी काव्यशास्त्र निष्णात विद्वान कलाकार नवनोन्मेष ~~शालिनी~~ शालिनी प्रतिभा से युक्त रस सिद्ध कलाकार थे। सूर की आविर्भाव काल विभिन्न सम्प्रदायों की संघर्ष काल है। उस समय ज्ञान योग और भक्ति का भी त्रिकोणात्मक संघर्ष चल रहा था। वैदान्तिक लोग अंतःकरण की शुद्धि को जप तप की प्रमुखता देते थे। सूरदास का मुख्य उद्देश्य निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन तथा ज्ञान के अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन रहा है।

— सूरदास पर यह है कि साम्प्रदायिकता की छाप अधिक है। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है — "वे अपने सम्प्रदाय में थे इन्होंने अनन्य उपासना के अनुसार केवल या प्रकृति को छोड़कर और देवताओं की स्तुति नहीं की है।"

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभाचार्य की उपासना माधुर्य भाव की उपासना थी, इनके उपास्य प्रेममूर्ति कृष्ण थे। सूरदास या अष्टछाप के अन्य कवियों ने तो इस का [illegible] कीर्तन एवं गुणगान करना था। उस समय निर्गुण संतों द्वारा ज्ञान योग का भी प्रचार हो रहा था। जो सगुण भक्ति धारा के विरुद्ध था। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि सूरदास ने गोपियों के उद्धव जिन्हें अपने ज्ञान का घमंड था।

भ्रमरगीत के दार्शनिक विचारों के परिप्रेक्ष में कुछ कथन के हैं [illegible] स्थापित रखते हुए हम दो आधारों पर

Scanned with CamScanner

पर विचार करते हैं —

1. सूरदास जी ने निर्गुण निराकार के स्थान पर सगुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा
2. भक्ति योग विरोध तथा प्रेममार्ग का महत्व

निर्गुण ब्रह्म ——→ उद्धव जी ने ब्रह्म का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वह तो अलख अत: अविनाशी और सर्वव्यापक है। अत: उन्हें सगुण रूप को छोड़कर निर्गुण रूप की उपासना करना चाहिए —

"है अविगत अविनाशी पूरन, सब घट रहै समाइ
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है वेद पुरानन गाइ।
सगुण रूप तजि निर्गुण ध्यावहु इक चित इक मन लाइ
वह उपाय करि बिरह तरौ, ब्रज मिलै ब्रह्म तब आइ॥"

ईश्वर घट-घट वासी है वह जीवों में उसी प्रकार निवास करता है जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि। ऐसी अवस्था में गोपियों को निर्गुण को छोड़कर सगुण के पीछे दौड़ना व्यर्थ है —

"घट घट व्यापक दारु अगिनि ज्यों
सदा बसै उर माहीं।
निर्गुण छाँड़ि सगुण को दौरति
सुधौ कहौ कित पाहीं॥"

उनका रूप रंग और आकार नहीं है। उनके माता पिता आदि नहीं हैं वह स्वयं ही माता पिता है —

"आपुहि पिता आपुहि माता आपुहि अगनि आपुहि भ्रात।
जाके रूप बरन वपु नाहीं, नैन मीचि चितौ गात माहीं"

ब्रह्म अगम्य है अविगत है संसार का आदि वही है और सर्वथा निराकार है —

"ए हैं आनन्द अपार आदि अविगत है सोही
आदि निरंजन नाम ताहि रंचै सब कोई॥"

उद्धव के इस ज्ञान कथन के प्रत्युत्तर में गोपियाँ ब्रह्म का सैद्धान्तिक विरोध करती वे यह तो नहीं कहती कि निर्गुण ब्रह्म नहीं होता है सगुणता तो

किन्तु वे कहती हैं कि हम ज्ञानमार्गी नहीं और ज्ञान भी नहीं सकती कि निर्गुण-ब्रह्म कैसा होता है —

"सूरदास प्रभु तुम्हरे ठाकुर आदि मायामायी यह कहि कर न समझाना कि ऊधो के निर्गुणवादी" वह पूछती है कि निर्गुण किस देश का रहने वाला है उसके माता पिता का परिचय क्या है —

निरगुन कौन देस को बासी?

को है जनक को है जननी कौन नारी को दासी

हमें तो निर्गुण से कोई परिचय नहीं है हमें तो केवल सगुण ज्ञान है और सगुण रूप साकार भी अपनों को निमग्न कर देती है और उस हटो किसी प्रकार छोड़ नहीं सकती। यहाँ लगा है या लागि —

लागि हम निरगुन को पहिचाना"

सब जानत सब सब सिंधु में यहि भावना पतराम अवधि सब उपदेश उद्धव सूरदास ब्रह्म लरवाना ॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है कि निर्गुणोपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाकर उपासना का हृदय ग्राहीतिवत सामने लाना ही भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य है, उन्होंने लिखा है कि — "रस विहीन उपदेश से अधिक व्यवहार ठीक चल सकता है, किन्तु रस के बिना कोई भी चल नहीं सकता। रस विहीन उपदेश किस प्रकार असर नहीं करता यह दिखाने को भ्रमरगीत की रचना हुई है" इस विवेचन जीवन की प्रवृत्ति के हेतुओं का संधान करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है कि —

"यह तत्कालीन उद्धव ज्ञान के प्रतिनिधि थे जिनका उद्देश्य करने के लिए सूर ने साकार की ही लीला लहराई। ज्ञान या योग की साधना वस्तुतः अत्यधिक कठिन है।"

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद

मिश्र ने ज्ञान योग की कठिनता को और नारियों को देते हुए लिखा है कि

"ज्ञान की कोरी व्याख्याओं और योग की बातों का यदि साधारण लोगों में विरोध प्रारम्भ हो जाय तो स्वाभाविक ही लगता है। निर्गुण एवं ईश्वर की सर्वव्यापकता भी बेमानी ही लगती है।

भ्रमरगीत में सूरदास ने निर्गुण और सगुण का खंडन मंडन इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर किया है। सूर ने योग मार्ग या ज्ञान को तो कठिन और नीरस कहा है तथा भक्ति मार्ग को विशाल सरल और सरस कहा है उसमें गोपन रहस्य की उलझन नहीं है गोपियाँ कहती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप! निर्गुन ~~कंटक~~ कंटक ते राजपथ क्यों रूंधो।

विश्व की विभूति में मन को रमाने का जैसा अवसर भक्ति भावना में है वैसा अन्य साधनाओं में नहीं।

सगुण ब्रह्म — जो ब्रह्म अव्यक्त और अविनाशी है जिसे योगी योग के अगाध सिन्धु में खोजते हैं और पाते नहीं। वही तो साकार रूप में यशोदा के उत्संग में बैठा—
जोगी जोग अपार सिन्धु में ढूँढ़े हूँ नहिं पावत।
तथा हरि प्रेम-प्रेम जसुमति के अंचल आपुन बँधावत।

निर्गुण ~~क~~ और सगुण का भेद भाव व्यर्थ है। जिसे निर्गुण ब्रह्म कहा है वह संतों के लिए सगुण होता है और लीला रूप धारण करता है—
सूर नन्द सुत प्रथम लीला वपुधारी।
निर्गुण ते सगुण भये कीर्तन हितकारी।

सगुणोपासना में प्रभु के रूप रस के पान में ही तल्लीनता मिलती है। इन्द्रियाँ प्रभु में इतनी रत हो जाती हैं कि उन्हें ध्यान रखना ही संभव असंभव हो जाता है। और वे रूप में इतनी मतवाली हो जाती हैं कि किसी की रोक नहीं सकती—

"अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी"
कैसे रहे रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी

सूर ने नंद नंदन के वेणुवत होकर ना कोउ सूखो। नेत्रों में उनके सिवाय और किसी को देखने का सामर्थ्य नहीं है। इसलिए ध्यान प्रभु के सिवा सब और सामग्री की कहाँ ध्यान दिया जाय —

"मोहिनी सकल मन में होर,
नंद नंदन अंकित हैं मानौ उर आँख"

प्रभु के सगुण रूप का ध्यान निराकार है प्रभु का मीठा रूप सबके आपके आकार में प्रेमियों से मुक्ति दिला देता है। उसमें अनुरागिता की निरन्तरता सहज है। ऐसे सगुण प्रभु के निराकार पथ की पता नहीं निर्गुण के कारण से सोचा जाता है —

"काहे को रोकत मारग सूधौ,
सुनहु मधुप निर्गुण कंटक तै राज पंथ क्यों रूधौ"

सगुण और निर्गुण का सबसे बड़ा अंतर यह है कि सगुण रूप अत्यंत सरस है तो निर्गुण नीरस नीरस रूप —

तजि रस रीति नंद नंदन की
सिखवत निर्गुण की को।

उस सगुण रूप के सामने तो सारा संसार ही फीका है —

"आली सुंदर स्याम हमारे और जगत सब
खारो जहाँ कछि मानं सूर स्वैया हमारे
खारी मथ है।।"

सगुण प्रभु में रूप का आलम्बन है निर्गुण की भाँति निरालम्बन नहीं है। सगुण प्रभु की उपासना के लिए साधनाओं का पहाड़ नहीं चढ़ना पड़ता। प्रभु की लीला ही जगत के बंधनों को तोड़ देती है। मन उसमें इतना रम जाता है कि छोड़कर कहीं जाता ही नहीं है। वह इतना सरस है कि एक बार - रस और अनुराग होते ही सारा जगत नीरस लगने लगता है।

इस प्रकार भ्रमरगीत के प्रकरण में प्रभु के सगुण

4. 1 6.

हिन्दुओं धर्म के सैद्धांतिक रूप [illegible]
स्वीकार किया गया है। किन्तु [illegible]
महज [illegible] नहीं है। [illegible] को भारत
व्यावहारिक में उनमें परम [illegible]
[illegible] आज उनमें धर्म अर्थ काम
और मुक्ति की पुन: तो [illegible]
स्वीकार नहीं करता ॥

[illegible]